INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 7 | AUGUST - 2022

स्वातंत्रोत्तर उपन्यासों में राजनीति और नैतिकता

उपासना द्विवेदी[1] & डॉ. लता द्विवेदी[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.).

सारांश –

इस देश की समाज–व्यवस्था जटिल है और अनेक विसंगतियों से भरी हुई है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने धर्म या जाति के दडवे में बंद रहकर जीने में ही अपने जीवन की सार्थकता का अनुभव करता है। अपनी सीमित दुनिया को ही 'विश्व' समझकर जीते रहता है। यहाँ औरों के जीवन में झाँकने की इजाजत ही नहीं है। रचनाओं के माध्यम से ही हम उस मजहब में जीने वाले लोगों के सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यक्तिगत जीवन को जान सकते हैं। क्या उसकी रचनाएँ उस मजहब में जीने वाले के दर्पण बन सकी हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल की रचनाओं के माध्यम से हम उनकी भारत के जनजीवन को जान सकते हैं।

मुख्य शब्द – स्वातंत्र्योत्तर, राजनीति, नैतिकता, रचना, भारत एवं जनजीवन ।

प्रस्तावना –

आजादी के बाद देश का सही दिशा में विकास हुआ होता तो देश का मानचित्र कुछ अलग ही होता। देश को प्याज आयात करने की आवश्यकता न होती। देश के विकास के संबंध में 'एक और मुख्यमंत्री' के प्रामाणिक राजनेता शंकरभाई अरविंद से कहते हैं, "आप ठीक फरमाते हैं। निर्माण और औद्योगिक प्रगति जिस गति से हुई, उस गति से बीस गुना गति से भ्रष्टाचार, महँगाई, भूख, गरीबी, मुनाफाखोरी भी बढ़ी। बिना अनाज के ये उद्योग–धंधे विद्रूप लगते हैं। पेट भूखा हो और हवाई जहाज की सैर उपलब्ध हो, यह कहाँ की सही उपलब्धि है? मैं कहता हूँ कि इससे बड़ा किसी राष्ट्र का क्या मजाक हो सकता है कि कृषि प्रधान देश में करोड़ों आदमी भूखे सोते हों।"[1]

वर्तमानकालीन शासन व्यवस्था शोषक वर्गो द्वारा संचालित होती है, शोषक वर्गो के लिए होती है। इसीलिए सभी नियम कानून पूँजीवादी शोषक व्यवस्था अपने हित में बनाती है और इसका पालन पुलिस, सेना और न्यायालयों द्वारा करवाती है। पुलिस, सेना और न्यायालय शोषक वर्ग के हित साधन के लिए बने हैं और शोषित का शोषण करने में व्यवस्था के सहयोगी हैं। जनता मात्र सहने का ही काम करती है। गिरिराज किशोर ने 'परिशिष्ट' में इसी मानसिकता का चित्रण किया है। इस संबंध में उपन्यास का विश्वनाथ कहता है, "इस देश का भाग्य कैसे बदलेगा। जब तक यह कांग्रेस सरकार है, तब तक कुछ नहीं होगा। कहने को समाजवाद की बात यह भी कहते हैं, मगर एक–एक मिनिस्टर की चोटी टाटा–बिरला के हाथ में है। बीस साल हो गये हुकूमत करते हुए, मगर गरीबी बेरोजगारी की सीमा नहीं। मुझे आश्चर्य होता है कि कैसे जनता इनको बरदास्त कर रही है।"[2]

"इस देश के सुख–सुविधाओं का उपभोग चंद बुद्धिजीवी या थोड़ा–सा आगे बढ़ा जाये तो साक्षरों तक के लिए ही है। इन लोगों को इस देश का संविधान क्या देता है जो निरक्षर है, जो केवल रोटी, कपड़ा और मकान चाहते हैं।"[3]

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति में सत्यवादी नेता जेल की सलाखों में बंद कर दिये जाते हैं और गद्दार सत्तासीन होकर राजा–महाराजाओं के समान राज करते हैं। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध गाँधीवादी नेता समाजसेवक अन्ना हजारे को सत्य विधान करने के कारण जेल की हवा खानी पड़ी। महाराष्ट्र के समाजकल्याण मंत्री बबनराव घोलप पर अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार का आरोप लगाया था। ऐसा बताया जाता है कि विधायक बनने के पहले बबनराव घोलप ने सिनेमा थियेटरों के सामने चोरी–चोरी टिकट बेचते थे। विधायक बनते ही उनकी लाटरी लग गयी। वे कुछ सालों में करोड़ों के माालिक बन गये। महलों में रहने लगे, लाखों रूपयों की कीमती गाड़ी में घूमने लगे, हजारों एकड़ खेत के मालिक बने। यह करोड़ों रुपयों की जायजाद कहाँ से आयी। यही प्रश्न अन्ना हजारे ने समाचार पत्रों में उठाया था। मंत्री महोदय पर लगाये गये आरोप के कारण सत्यवादी अन्ना हजारे को जेल जाना पड़ा और मंत्री जी इज्जत से जीवन जीते रहे। वर्तमानकालीन शासन व्यवस्था में यही होता है बेगुनाह को सजा मिलती है और गुनहगार इज्जत से जीवन जीते हैं। एक और हिन्दुस्तान में बेगुनाह को मिलने वाली सजा का चित्रण किया गया है। उपन्यास के रामदीन को सजा किस जुर्म में हुई है यह भी मालूम नहीं है। बेचारा बेगुनाह है फिर भी तीन साल से सजा काट रहा है। उपन्यास का बद्री एक सरल इन्सान था। रेवेन्यू के डिप्टी सेक्रेटरी सरन साहब की गाड़ी का ड्राइवर था। सरन साहब से एक्सीडेंट होता है। किसी बड़े साहब की बच्ची मर जाती है और सजा भुगतनी पड़ती है बेचारे बेगुनाह बद्री को, आज भारतीय राजनीति में सड़ी–गली घातक परम्पराओं का निर्माण हो गया है।

भारतीय राजनीति में भाई–भतीजावाद प्रखर रूप में उभरकर आ गया है। विशिष्ट वर्ग का पूरा खानदान राजनीति में है। पिता, पुत्र, पुत्री, पत्नी सभी राजनीति में सक्रिय हो गये हैं। कुछ विशिष्ट परिवारों की तो राजनीति में मुक्तेदारी हो गयी है। आज राजनीति धन, सत्ता और प्रतिष्ठा कमाने का व्यवसाय बन गयी है। इस राजनीतिक व्यापार में मुनाफाखोरों की, दलालों की, काला धंधा करने वालों की पाँचों उगलियाँ घी में हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक डॉ. आंबेडकर ने कहा था, ''हर देश के हर–समाज में दो वर्ग रहते हैं, पहला शासनकर्ता और दूसरा बहुजन वर्ग। आम चुनावों में शासनकर्ता जमात ही सत्तासीन हो जाती है। बहुजन समाज को चुनकर आने की कोई गुंजाईश नहीं रहती है।''[4]

स्वतंत्रता पूर्व में नेता शब्द समाज–सेवक का प्रतिरूप माना जाता था। नेता को पूजा जाता था। घर–घर में उसकी तस्वीरें लगायी जाती थी, लेकिन आज नेता शब्द से जनता को घृणा आने लगी है। 'एक और मुख्यमंत्री' में यादवेंद्र शर्मा लिखते है, "आज का यह नेता शब्द कितना स्वार्थी, अवसरवादी और बेईमान होता जाता है? यह श्रद्धा से पूजा जाने वाला शब्द से जनता जर्नादन की दृष्टि से एक दिन घृणा का परिचारक हो जायेगा।"[5]

आज आम आदमी की नजर में राजनीति ने एक वेश्यालय का रूप धारण कर लिया है। जहाँ पहुँचकर किसी का चरित्र निष्कलंकित नहीं रह सकता। देश की संसद भी इस कलंक से नहीं बच पायी है। आज के नेताओं को सामान्य व्यक्तियों की भुखमरी, पीड़ा, दुःख और कष्ट की चिंता नहीं है। वे तो आत्मसुख में लीन रहते हैं, जनता के आगे वे मात्र दिखावा करते हैं। वे आत्मप्रशंसा और आत्मसुख में लीन रहते हैं। बुद्धिजीवी भी उनके समक्ष आत्मसमर्पण कर चुके हैं। इन नेताओं के आदर्श खोखले हैं। इनके चरित्र भ्रष्ट हैं। ये समाचार पत्रों को भी अपने गीत गाने के लिए विवश करते हैं। वर्तमानकालीन राजनीति में भ्रष्टाचार गली से लेकर दिल्ली तक व्याप्त है।

विश्लेषण –

आज राजनीति कुर्सी का पर्याय बन गयी है। राजनीतिज्ञ कुर्सी के मोह से इस तरह ग्रसित हो रहे हैं कि अब स्वतंत्रता उनका जन्मसिद्ध अधिकार न होकर कुर्सी का महत्व इतना बढ़ गया है कि राजनेताओं को चारों ओर कुर्सी ही कुर्सी नजर आ रही है। उनका उठना, बैठना, खाना, पीना ओढ़ना, बिछाना अर्थात् सब कुछ कुर्सीमय हो गया है। लेकिन कुर्सी से जुड़े कर्तव्य की ओर वे आँख मोड़ लेते हैं। प्रामाणिकता से देखा जाये तो कुर्सी साधन है साध्य नहीं। वह मात्र आसन है, आराध्य नहीं। आज नेताओं को कुर्सी के मोह से मुक्त होना

चाहिए। कुर्सी पर बैठे हुए नेता हमेशा कुर्सी पर ही बैठना चाहते हैं। कुर्सी पाने के लिए वे भिखारी की तरह घर–घर वोटों की भीख मांगते हैं। मतदाताओं से तरह–तरह के वादे करते हैं। उनसे आत्मीय संबंध निर्माण कर पुरानी पहचान निकाल कर, वोट प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।[6]

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति में चमचा संस्कृति का विकास तेज गति से हुआ। अन्य कार्यों के अतिरिक्त जनता के शोषण जैसे महत्वपूर्ण कार्य में भी राजनेताओं के साथ–साथ उनके चमचे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं या यूं कहा जाये कि नेता तो इशारा ही करता है बल्कि ये क्रिया–कलाप चमचा दल ही सम्पन्न करता है। मन्नू भंडारी के 'महाभोज' के 'दा साहब' के चमचे और पिट्ठू जोरावर सिंह जैसे लोग हर गाँव में उपस्थित रहते हैं, जिन्हें खेती हर मजदूरों, दलितवर्ग के शोषण और निर्मम विनाश की तांडव क्रिया करने के लिए अपने राजनीतिक आकांक्षाओं का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होता है। चमचों के अत्याचार इतने बढ़ जाते हैं कि गाँव की बहू बेटियाँ भी उनके चंगुल से स्वयं को सुरक्षित नहीं पातीं।

प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था में आजादी के बाद देश के राजनीतिक पटल को बदनाम करने में विपक्ष ने कुछ कम महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाई। विरोधी दल ने अपने दायित्व को कभी गंभीरता से अनुभव नहीं किया और आपसी हितों को लेकर ही लड़ते रहे। कभी भी सत्ताधारी और विरोधी पक्षों में एकमत नहीं हो पाया है। विरोधियों ने तो मात्र विरोध करने की भूमिका ही अदा की है। जब भी कोई महत्वपूर्ण विधेयक संसद में पेश होता है तो विरोधी दल मात्र सत्ताधारियों को परेशान करने हेतु विरोध करते हैं।

झूठ फरेब राजनीति का प्रमुख आधार स्तंभ बन गया है, जो राजनेता अपने मतदाताओं से झूठ बोलने में कामयाब होता है, वही राजनीति में सफल होता है। बिना झूठ के राजनीति सफल नहीं हो सकती। राजनेता अपनी कार्य सफलता के लिए राजनीति में सौ झूठ बोलता है फिर भी सत्यवादी बनने का निरन्तर प्रयास करता है।

वर्तमान प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था में राजनेता और राजनीति दोनों नैतिक पतन के साथ–साथ चारित्रिक पतन की चरम सीमा पर है। राजनीति इतनी गंदला गयी है कि चरित्रवान व्यक्ति भी राजनीति में अपने आप का चरित्र बचा नहीं पाता। राजनीति में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रहा है। नीतिवान व्यक्ति का राजनीति में चुनकर आना असंभव–सा हो गया है। अनगिनत प्रामाणिक राजनेता प्रामाणिकता के कारण राजनीतिक पटल से दूर फेंके गये हैं। प्रामाणिक राजनेता अटलबिहारी बाजपेयी ने इसी समस्या पर 'कैदी कवि राय की कुंडलियाँ' की भूमिका में लिखा है, आज राजनीति विवेक नहीं, वाकचातुर्थ चाहती है, संयम नहीं असहिष्णुता को प्रोत्साहन देती है, श्रेय नहीं प्रेय के पीछे पागल है। आदर्शवाद का स्थान अवसरवाद ने ले लिया है। बाएँ और दाएँ का भेद व्यक्तिगत ज्यादा है, विचारगत कम सब अपनी–अपनी रोटी लाल करने में लगे हैं। उत्तराधिकारी भी शतरंज पर मोहरे बैठाने की चिंता में लीन हैं।

आज राजनीति में नैतिकता का स्थान नगण्य माना जाता है, जो धनवान कूटनीतिज्ञ है वही राजनीति में सफलता प्राप्त कर सकता है। राजनीति ने धनवानों का दामन पकड़ लिया है।[7]

आज राजनेताओं के पास चरित्र नाम की कोई चीज नहीं की रह गयी है। मंत्री महोदय काम में पिपासु बन गये हैं। वे अवसर मिलते ही किसी मजबूर महिला को थोड़ा सा उपकृत कर अपनी पिपासा शांत करते हैं। वर्तमानकालीन मंत्री महोदय महिला आश्रम और शिशु निकेतन की संस्थापिका, समाजसेविका को राजधानी बुलाकर उनके कार्यों की प्रशंसा करते हुए उनको आश्रम संचालक के लिए चंदा देते हैं और पूरी हमदर्दी और आत्मीयता दिखलाकर शहर से दूर अपने बंगले या विश्रामगृह तथा डाक बंगले वेश्यालयों के अड्डे बन गये हैं। 'दारूलशफा' में राजकृष्ण मिश्र ने लोबीराम तथा उत्सुकदास जैसे चरित्रहीन राजनेताओं का चित्रण किया है। उपन्यास का नीतिभ्रष्ट राजनेता लोबीराम तथा नाबालिग लछमनिया से अनैतिक संबंध स्थापित करता है। जब लछमनिया लोबीराम के निवास पर पान लेकर आती है, लोबीराम हमेशा चवन्नी की जगह अठन्नी उसके हाथों पर रख ही देते। कभी–कभी तो प्यार से अठन्नी वह लछमनियाँ के ब्लाउज के अंदर हाथ डालकर छोड़ दिया करते। उनके हाथ धीरे–धीरे ब्लाउज के अंदर ज्यादा देर तक रहने लगे। लोबीराम ने उसे अपनी रखैल बनाकर ही रखा।[8] इसी उपन्यास का उत्सुकदास भी नीतिभ्रष्ट राजनेता है। वह राजनीतिक सफलता की ऊँची चोटी पर पहुँच जाता है। अनैतिकता उसके रास्ते की बाधा नहीं बनती वह प्रदेश का मुख्यमंत्री बन जाता है। उत्सुकदास प्रतिभा जैसी सुंदर युवती के साथ अनैतिक संबंध स्थापित कर एक बच्चा भी पैदा करता है। उसे सदा के लिए

अपनी रखैल बनाने के लिए अपने ही एक शिष्य से जो उसका पी.ए. है, प्रतिभा की शादी करा देता है और जब चाहे तब अपनी वासना का शमन करता है।

स्वातंत्रोत्तर उपन्यासों में मध्यवर्ग तथा निम्न मध्यवर्गीय जनता का चित्रण केंद्रीय विषय रहा है। मध्यवर्गीय तथा निम्नमध्यवर्गीय समाज के संदर्भ में डॉ. अर्जुन चव्हाण लिखते हैं, ''मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है, विशेषतः निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति अत्यंत सोचनीय होती है।'' विवेच्य उपन्यासों में चित्रित पात्रों की स्थिति भी ठीक इसी प्रकार दृष्टिगोचर होती है। अर्थ जीवन की धुरी है। इस पर जीवन की सारी समस्याएँ निर्भर करती हैं। प्रत्येक युग का सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन अर्थ प्रक्रिया से ही संचालित होता है। डॉ. जयश्री बरहाटे ने लिखा है–''विभिन्न सामाजिक संघर्षों, राजनीतिक समस्याओं एवं क्रान्तियों का मूल कारण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ से ही संबंधित रहा है।''[9]

गोपालकृष्ण शर्मा लिखते हैं – ''सामाजिक जीवन में गरीबी, भुखमरी, विषाद, उत्पीड़न, अनमेल विवाह, उपेक्षा, अत्याचार, अमानवीयता, विधवा–विवाह तथा अन्यान्य समस्याएँ और विसंगतियाँ विद्यमान हैं।''[10]

समाज की इन समस्याओं तथा विसंगतियों की जड़ अर्थ है। विवेच्य उपन्यासों में अधिकतर पात्र अर्थाभाव से पीड़ित हैं जो विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए परिलक्षित होते हैं। विवेच्य उपन्यासों में अर्थ से संबंधित संघर्ष–चेतना का आयाम प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होता है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः विभिन्न आयाम, समान शिक्षा, राजनीति, सांप्रदायिकता, अंतर्जातीय संघर्ष, अधिकार से संबंधित संघर्ष, शोषण के खिलाफ संघर्ष तथा व्यक्तिगत संघर्ष–चेतना आदि का अपने–अपने स्थान पर विशेष महत्व है। उपन्यास जीवन को सबसे सजीवता से प्रतिबिंबित करने वाली साहित्यिक विधा है। समकालीन उपन्यासों की लंबी परंपरा में प्रगतिशील चेतना के विभिन्न आयाम क्रमशः उद्घाटित होते हैं। पश्चिमी सभ्यता के साथ संपर्क तथा ज्ञान–विज्ञान के नये–नये आविष्कारों ने भारतीय चेतना में कितना बड़ा परिवर्तन हुआ है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण उपन्यास विधा है। भारतीय स्वतंत्रता आधुनिक युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी जिसमें मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की मान्यताओं को हर स्तर पर बुरी तरह झकझोर दिया। उसके जीवन–मूल्यों एवं नैतिकता तथा मानवीयता के आदर्श को बहुत बड़ा सदमा पहुंचा।

संदर्भ –

[1] यादवेंद्र शर्मा – एक और मुख्यमंत्री, पृष्ठ 209
[2] गिरिराज किशोर – उपन्यासों में चित्रित प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था, पृष्ठ 124
[3] यादवेन्द्र शर्मा – प्रजाराम, पृष्ठ 39
[4] सम्पादक हातोले – डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर को समर्पित मानपन, पृष्ठ 55
[5] यादवेन्द्र शर्मा – एक और मुख्यमंत्री की भूमिका से
[6] शंकर पुणतांबेकर – एक मंत्री स्वर्गलोक में, पृष्ठ 41
[7] यादवेन्द्र शर्मा – एक और मुख्यमंत्री, पृष्ठ 209
[8] राजकृष्ण – दारुल शफा, पृष्ठ 113
[9] डॉ. सौ. जयश्री बरहाटे – हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक, पृष्ठ 154
[10] गोपालकृष्ण शर्मा – उपन्यास और समाज, पृष्ठ 102